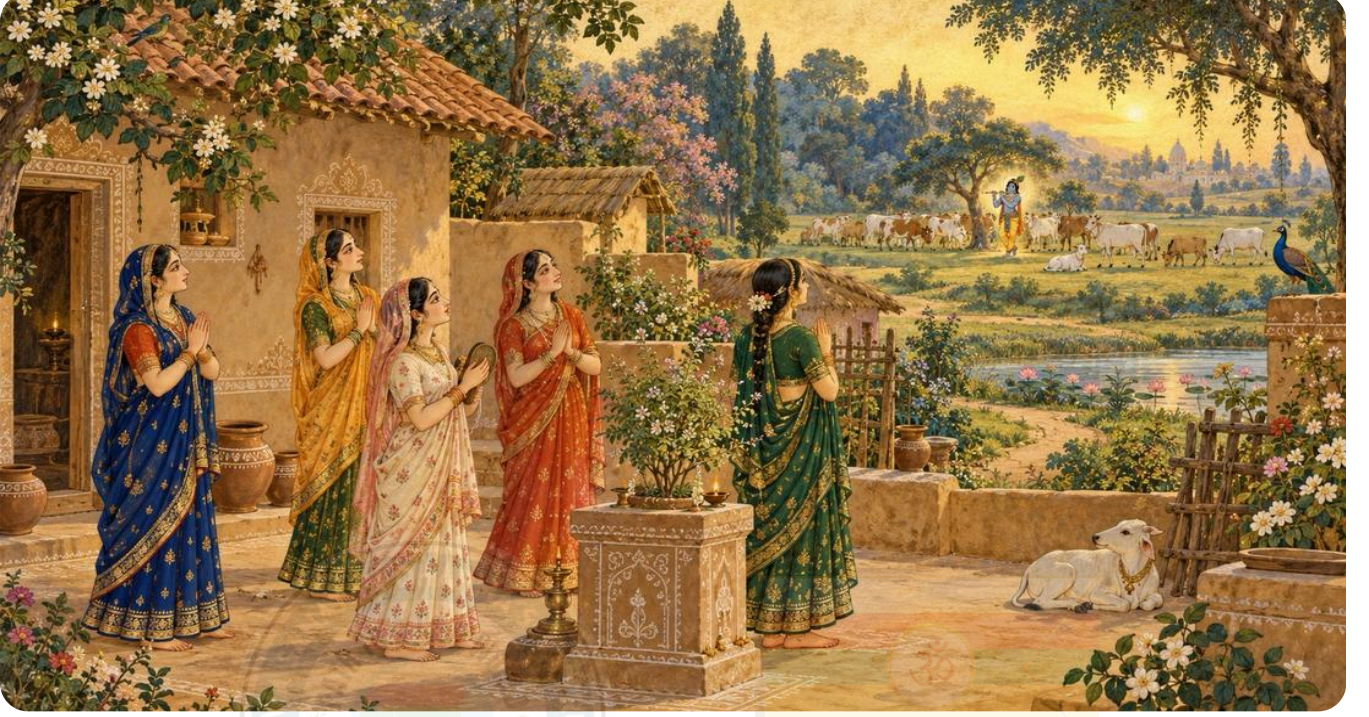


श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 35 — गोपियों का गान

5 October 2026



जब कृष्ण प्रभात से सन्ध्या तक गौओं के साथ वृन्दावन के वनों में विचरते हैं, तब ब्रज की गोपियाँ दिन के सारे प्रहर उसी वंशी की चर्चा करती और गाती हुई बिता देती हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विङ्गडम् में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध का यह पैंतीसवाँ अध्याय प्रायः पूरा एक ही दीर्घ गीत है: श्री शुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित को वही वचन सुनाते हैं जो ब्रज की गोपियाँ तब गाती थीं जब कृष्ण अपने गोधन के साथ वन में होते थे।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)
- अध्याय: 35 (पञ्चत्रिंश अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: वन में विचरते कृष्ण का गोपी-गान (गोपिका-युगल-गीत)
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को); अध्याय के भीतर ब्रज की गोपियाँ
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित; अध्याय के भीतर स्वयं गोपियाँ तथा माता यशोदा
- मुख्य स्थल: ब्रज, तथा वृन्दावन के वन, गिरि-शिखर और यमुना-तट
- केंद्रीय विषय: युगल श्लोकों में गोपियों का गीत — कृष्ण का वन-दिवस और सन्ध्या को लौटना
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 35, श्लोक 1-26
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

पिछले अध्याय में एक विशाल सर्प ने सोते हुए नन्द महाराज को निगल लिया, और कृष्ण के चरण-स्पर्श से वह शापमुक्त होकर सुदर्शन नामक विद्याधर बन गया; फिर रात्रि में कुबेर के अनुचर शङ्खचूड़ से ब्रज की स्त्रियों को छुड़ाकर कृष्ण ने उसकी चूड़ामणि ले ली। अब कथा दिन के उजाले की ओर मुड़ती है।

गोपियों के लम्बे दिन

प्रति प्रभात, जब कृष्ण गोप-बालकों और गौओं के साथ वन को निकलते, ब्रज की तरुणियों के मन उनके पीछे वन-पथ पर दौड़ पड़ते, यद्यपि चरण वहीं रह जाते। हाथ काम में उलझे और मन कहीं और — ऐसी दशा में वे वही करतीं जो प्रेम इतनी दूरी पर कर सकता है: उन्हें ऊँचे स्वर में गातीं, एक का स्वर थकता तो दूसरी उठा लेती, और इस प्रकार भारी प्रहर सन्ध्या तक ढो ले जातीं।

श्रीशुक उवाच

गोप्यः कृष्णो वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ।

कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥

śrī-śuka uvāca gopyaḥ kṛṣṇe vanam yāte tam anudruta-cetasaḥ kṛṣṇa-līlāḥ pragāyantyo ninyur duḥkhena vāsarān

अर्थ: श्री शुकदेवजी ने कहा — कृष्ण के वन को चले जाने पर गोपियाँ, जिनके चित्त उन्हीं के पीछे दौड़ गए थे, उनकी लीलाओं को ऊँचे स्वर में गाती हुई अपने दिन दुःख में बिताती थीं। (स्कन्ध 10, अध्याय 35, श्लोक 1)

अधरों पर रखी वंशी

उनका गान उसी दर्शन से आरम्भ होता है जो उनकी आँखों से हटता ही नहीं: वृक्षों के बीच खड़े मुकुन्द, बायाँ कपोल बायीं भुजा पर टिकाए, नाचती भौंहें, और अधर पर रखी वंशी पर फिरती कोमल अँगुलियाँ।

श्रीगोप्य ऊचुः

वामबाहुकृतवामकपोलो

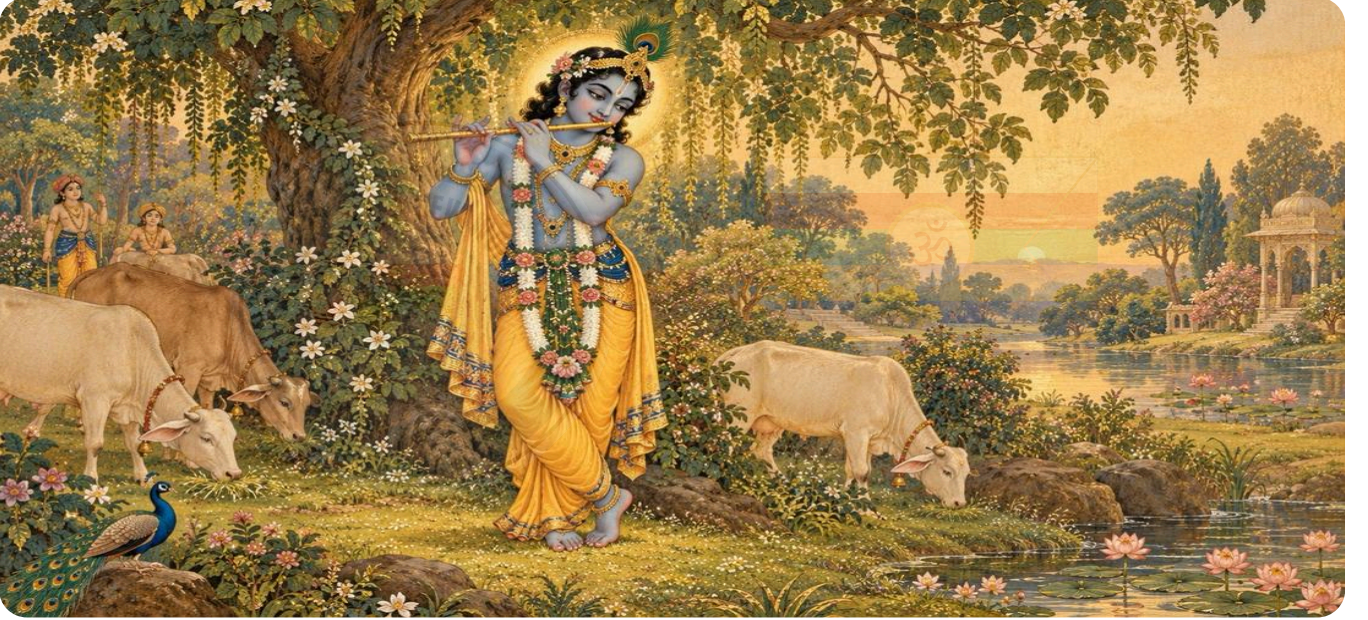
वल्लितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।

कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं

गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ २ ॥

*śrī-gopya ūcuḥ vāma-bāhu-kṛta-vāma-kapolo valgita-bhrur adharārpita-veṇum komalāṅgulibhir
āśrita-mārgaṁ gopya īrayati yatra mukundaḥ*

अर्थ: गोपियों ने कहा — हे सखियो, वहाँ अपना बायाँ कपोल बायीं भुजा पर टिकाए, भौंहें नचाते और अधर पर वंशी रखे मुकुन्द अपनी कोमल अँगुलियों से उसके छिद्रों को बजाते हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 35, श्लोक 2)



बायाँ कपोल बायीं भुजा पर टिकाए, भौंहें नचाते हुए मुकुन्द अपनी कोमल अँगुलियों से वंशी के छिद्रों को बजाते हैं — वही दर्शन जो गोपियों की आँखों से हटता ही नहीं।

वह संगीत वृक्षों में ही नहीं रुकता; वह आकाश में उन सिद्ध-पत्नियों तक पहुँचता है जो अपने पतियों के साथ विहार करती हैं। उसे सुनकर वे देवांगनाएँ विस्मित और लज्जित हो उठती हैं, उनके चित्त काम के बाणों का लक्ष्य बन जाते हैं, और वे ऐसी विह्वल होती हैं कि अपने खिसकते वस्त्रों का भान नहीं रहता।

गौएँ ठहर जाती हैं और नदियाँ रुक जाती हैं

यह आश्चर्य सुनो, गोपियाँ कहती हैं। जब नन्द के लाल — जिनके वक्ष पर लक्ष्मीजी स्थिर बिजली की रेखा-सी सुशोभित हैं — वियोग से पीड़ित सबको आनन्द देने के लिए वंशी बजाते हैं, तब व्रज के वृषभ तथा वन के मृग और गौएँ जहाँ के तहाँ कान खड़े किए ठहर जाते हैं, दूर से आती स्वर-लहरी मन हर लेती है, और घास का ग्रास दाँतों के बीच वैसा ही रुका रह जाता है। वे सोए हुए प्राणी जान पड़ते हैं, अथवा भित्ति पर चित्रित पशु।

कभी वे मल्ल का वेश धारते हैं — केशों में मयूर-पिच्छ, अंगों पर कोमल पल्लव और रंग-बिरंगे गेरु-धातु — और बलराम तथा गोप-बालकों के साथ गौओं को नाम ले-लेकर पुकारते हैं। तब नदियाँ अपनी गति तोड़ देती हैं, उनकी तरंगें प्रेम से काँपती भुजाओं-सी उठकर पवन पर बहकर आती उनके चरणों की धूल को पाना चाहती हैं; और वह पहुँच से बाहर रह जाने पर उनका जल स्तब्ध हो जाता है — हमारी ही भाँति अल्प पुण्य वाली, गोपियाँ जोड़ती हैं।

तर्हि भग्नगतयः सरितो वै
तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।
स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः
प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ॥ ७ ॥

tarhi bhagna-gatayaḥ sarito vai tat-padāmbuja-rajo 'nila-nītam spṛhayatīr vayam ivābahu-puṇyāḥ prema-vepita-bhujāḥ stimitāpaḥ

अर्थ: तब नदियाँ, जिनका प्रवाह टूट जाता है और जिनकी भुजा-सी तरंगें प्रेम से काँपने लगती हैं, पवन द्वारा लाई गई उनके चरण-कमलों की रज की अभिलाषा करती हैं; और हमारी ही भाँति अल्प पुण्य वाली होने से उनका जल स्तब्ध रह जाता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 35, श्लोक 7)



गौएँ और वन-मृग घास का ग्रास दाँतों में थामे ठहर जाते हैं, और नदियाँ अपनी गति तोड़कर भुजा-सी तरंगों से उनके चरणों की रज चाहती हैं।

मधु बरसाते वृक्ष, मौन बैठे पक्षी

गीत उनके पीछे पर्वत की ढालों तक चढ़ जाता है। अनुचर साथ चलते हुए उनके पराक्रम का वर्णन करते हैं, और उनका ऐश्वर्य आदिपुरुष की भाँति अचल रहता है। वहाँ विचरते हुए वे वंशी से गिरि-तट पर चरती गौओं को पुकारते हैं; और पुष्प-फल से लदी वन-लताएँ तथा वृक्ष शाखाएँ भार से झुकाए, प्रेम से रोमांचित, मधु की धाराएँ बरसा देते हैं — मानो अपने भीतर विराजमान विष्णु को ही प्रकट कर रहे हों।

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः
प्रेमहृष्टतनवो ववृषुः स्म ॥ ९ ॥

*vana-latās tarava ātmani viṣṇuṁ vyañjayantya iva puṣpa-phalāḍhyāḥ praṇata-bhāra-viṭapā
madhu-dhārāḥ prema-hṛṣṭa-tanavo vavṛṣuḥ sma*

अर्थ: पुष्पों और फलों से समृद्ध वन-लताएँ तथा वृक्ष, जिनकी शाखाएँ उस भार से झुक गई हैं और जिनकी देह प्रेम से रोमांचित है, मधु की धाराएँ बरसाने लगे, मानो अपने भीतर स्थित भगवान् विष्णु को ही प्रकट कर रहे हों। (स्कन्ध 10, अध्याय 35, श्लोक 9)

उनके ललाट पर दर्शनीय तिलक है, और वनमाला की तुलसी ऐसी अलौकिक सुगन्ध बिखेरती है कि उसके मधु से मत्त भ्रमर उनके चारों ओर गुंजार करते हैं; वे उस गुंजन को आदर से सुनते हैं और वंशी पर उत्तर देते हैं। उसे सुनकर सरोवरों के सारस और हंस हरि के समीप आ बैठते हैं — चित्त संयत, नेत्र मुँदे और चोंच मौन — मुनियों की भाँति उनकी उपासना करते हुए।



पुष्प-फल के भार से झुकी लताएँ और वृक्ष मधु की धाराएँ बरसाते हैं, और सरोवरों के सारस तथा हंस नेत्र मुँदे, मौन होकर हरि के पास आ बैठते हैं।

छत्र बनकर छाया करता मेघ

बलराम साथ हैं, पुष्पों के आभूषण हैं, और पर्वत के शिखरों पर खड़े होकर वे वंशी से समस्त विश्व को भर देते हैं और स्वयं भी आनन्द से भर जाते हैं। ऊपर मेघ उत्तर देता है: उस महान् का अनादर करने से डरकर वह गरजता नहीं, मन्द स्वर में ताल देता है, अपने सखा पर फुहारों के पुष्प बरसाता है और अपनी छाया का छत्र तान देता है।



आकाश भी उनकी सेवा में है: मेघ अपनी गर्जना रोक लेता है, वंशी के साथ कोमल ताल देता है, और पर्वत पर खड़े दोनों भाइयों को अपनी ही देह से छाया देता है।

वह संगीत जिसे देवता भी न नाप सके

अब गायिकाएँ माता यशोदा की ओर मुड़ती हैं। हे साध्वी, तुम्हारा पुत्र गोपों की सब कलाओं में निपुण है, और जब वह पके बिम्बफल-से लाल अधर पर वंशी रखता है, तब अपनी ही शिक्षा से नए-नए स्वर-समूह निकाल लेता है। इन्द्र, शङ्कर और ब्रह्मा जैसे देव-श्रेष्ठ उसे घड़ी-घड़ी सुनते हैं, और वे महाज्ञानी ग्रीवा और चित्त उस ओर झुकाए, उसका तत्त्व न पा सकने से विमूढ़ हो जाते हैं।

सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः

शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ।

कवय आनतकन्धरचित्ताः

कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५ ॥

savanaśas tad upadhārya sureśāḥ śakra-śarva-parameṣṭhi-purogāḥ kavaya ānata-kandhara-cittāḥ kaśmalam yayur aniścita-tattvāḥ

अर्थ: उस संगीत को बार-बार सुनकर इन्द्र, शिव और ब्रह्मा को अग्रणी बनाए हुए देवताओं के अधिपति, विद्वान् होते हुए भी, अपनी ग्रीवा और चित्त उस ओर झुकाए रह गए और उसका तत्त्व निश्चित न कर सकने के कारण विमोहित हो गए। (स्कन्ध 10, अध्याय 35, श्लोक 15)

यहीं यह गीत अपने गहनतम स्वर को छूता है। ब्रह्मा और शङ्कर, ज्ञानियों में श्रेष्ठ, उस वंशी के सम्मुख सिर झुका देते हैं और निश्चय नहीं कर पाते कि यह क्या है; किन्तु ये ग्राम-वधुएँ, जो स्वयं को अल्प पुण्य वाली कहती हैं, एक गाँव की दूरी से उसका स्वर-स्वर वर्णन कर देती हैं। भगवान् की माधुरी तर्क के आगे नहीं खुलती; वह प्रेम के आगे स्वयं को सौंप देती है — और सबसे स्पष्ट वही प्रेम देखता है जिसे बाहर कोई आलम्बन मिला ही नहीं, उन्हीं का प्रेम जो उन्हें वन जाते देखकर पीछे रह गई। इसलिए उनका वियोग रिक्तता नहीं: दुःख में खुलने वाला दिन प्रहर-प्रहर का दर्शन बन जाता है, और यह गान ही उसे ऐसा बनाता है।

उनके अपने हृदय और वन को हारोणोयों

वे चलते हैं, गोपियाँ गाती हैं, तो कमल-दल-से कोमल और ध्वजा, वज्र, कमल तथा अंकुश से अंकित उनके चरण-तल व्रज की उस भूमि की पीड़ा हर लेते हैं जिसे खुरों ने व्यथित किया; उनकी चाल गजराज की चाल है और वंशी बजती चलती है। और हम, जो उन्हें जाते देखती हैं, उन विलास-भरी चितवनों से विद्ध होकर वृक्षों-सी निश्चल रह जाती हैं, वेणी और वस्त्र तक का भान खो बैठती हैं।

कभी वे रंग-बिरंगे मनकों की माला पर गौओं की गणना करते हैं, किसी प्रिय सखा के कन्धे पर भुजा रखते हैं, और अपनी प्रिय सुगन्ध वाली तुलसी की माला पहने गाने लगते हैं। तब वन की हरिणियाँ उस वंशी पर मन हार बैठती हैं और गुणों के सागर कृष्ण से एक बार मिलकर फिर उनका साथ नहीं छोड़तीं — हमारी ही भाँति घर लौटने की आशा त्यागकर।

यमुना-तट पर सन्ध्या

हे निष्पाप यशोदा, वे कहती हैं, तुम्हारा लाल चमेली की मालाओं से क्रीड़ापूर्वक सजता है, और गोप-बालकों तथा गोधन से घिरा यमुना के तट पर खेलता है, प्रियजनों को आनन्द देता हुआ। मन्द पवन उसके अनुकूल बहती है और चन्दन-सी शीतल सुगन्धित छुआन से उसका स्वागत करती है; और वन्दीजन बने देवगण वाद्य, गान और भेंटों के साथ उसे घेरकर उसकी वापसी में विलम्ब करा देते हैं।

वे लौट रहे हैं

फिर प्रतीक्षा समाप्त होती है और गीत पहचान की पुकार बन जाता है। वे व्रज की गौओं पर वत्सल हैं; उन्हीं के लिए उन्होंने कभी पर्वत उठाए रखा; मार्ग में वृद्धतम जन उनके चरणों की वन्दना करते हैं। दिन ढलते ही वे गोधन समेटते हैं, वंशी बजाते हैं और घर चल पड़ते हैं, जबकि अनुचर उनकी कीर्ति गाते चलते हैं और खुरों की धूल उनकी माला पर छा जाती है।

उत्सवं श्रमरुचापि दृशीना-
मुन्नयन् खुररजश्चुरितस्रक् ।
दित्सयैति सुहृदासिष एष
देवकीजठरभूरुदुराजः ॥ २३ ॥

utsavam śrama-rucāpi dṛśīnām unnayan khura-rajaś-churita-srak ditsayaiti suhṛd-āsiṣa eṣa devakī-jathara-bhūr uḍu-rājah

अर्थ: अपनी थकान की शोभा से भी हमारे नेत्रों के लिए उत्सव रचते हुए, खुरों की धूल से भरी माला पहने, देवकी के गर्भ से प्रकट वे चन्द्रमा अपने प्रियजनों की अभिलाषा पूर्ण करने की इच्छा से यह आ रहे हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 35, श्लोक 23)



लम्बी प्रतीक्षा समाप्त होती है: यदुनाथ गोधन के साथ मार्ग पर लौट आते हैं, और उनकी थकान की शोभा भी प्रतीक्षारत नेत्रों के लिए उत्सव बन जाती है।

उनके नेत्र मद से कुछ घूमते-से हैं; मुख पकते बदरीफल-सा पाण्डुर; स्वर्ण-कुण्डल कोमल कपोलों को आलोकित करते हैं; वनमाला झूल रही है, और मार्ग में वे अपने एक-एक जन का सम्मान करते चलते हैं। इस प्रकार यदुनाथ दिन के अन्त में रात्रि के अन्त के चन्द्रमा-से आ रहे हैं, गजराज-सी गति से, प्रसन्न मुख — और व्रज की स्त्रियों का दिन भर का अनन्त सन्ताप शान्त हो जाता है।

उनके दिन उत्सव बन गए

इस प्रकार शुकदेवजी ने वह गीत पूर्ण किया। व्रज की स्त्रियाँ, जिनकी बुद्धि और मन को कृष्ण के अतिरिक्त कहीं जाना ही नहीं था, उनकी लीलाओं को बार-बार गाती हुई अपने दिन भी आनन्द में बिताती रहीं।

श्रीशुक उवाच

एवं व्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीलानुगायतीः ।

रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥

śrī-śuka uvāca evaṁ vraja-striyo rājan kṛṣṇa-līlānugāyatīḥ remire 'haṣsu tac-cittās tan-manaskā mahodayāḥ

अर्थ: श्री शुकदेवजी ने कहा — हे राजन्, इस प्रकार व्रज की स्त्रियाँ, कृष्ण की लीलाओं का निरन्तर गान करती हुई, चित्त और मन उन्हीं में लगाए, महान् सौभाग्य से सम्पन्न होकर दिन में भी आनन्द का अनुभव करती रहीं। (स्कन्ध 10, अध्याय 35, श्लोक 26)

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. जब प्रेम पीछे नहीं जा सकता, तब वह गाने लगता है। वन में उनके पीछे चल न सकने पर गोपियों ने उन्हें गीत बना लिया। दूरी के साथ भक्ति यही करती है — कीर्तन।
2. समस्त सृष्टि पहले से ही सुन रही है। नदियाँ थम जाती हैं, वृक्ष मधु बरसाते हैं, हंस और हरिणियाँ पास चली आती हैं। भक्ति निजी भावना मात्र नहीं, वह स्वर है जिस पर सारा संसार चुपचाप बैठा है।
3. उनकी माधुरी पाण्डित्य से नहीं मिलती। बड़े-बड़े देवता उस वंशी पर अपना चित्त झुकाकर भी विमूढ़ रह जाते हैं। ज्ञान नापता है; प्रेम सुनता है।
4. विनम्रता ही गोपियों का आभूषण है। इतने आश्चर्यों का वर्णन करते हुए भी वे स्वयं को अल्प पुण्य वाली ही कहती हैं। जो उनके सबसे निकट हैं वे स्वयं को योग्य नहीं मानते, और यही उनकी योग्यता है।
5. स्मरण प्रतीक्षा को उत्सव बना देता है। जो प्रहर व्यथा में खुले थे वे आनन्द में बन्द हुए। परिस्थिति नहीं बदली; उसमें भरा तत्त्व बदल गया।

एक भक्तिमय चिन्तन

यहाँ एक बात चुपचाप विस्मित कर देती है: कुछ घटित ही नहीं होता। न कोई असुर मारा जाता है, न पर्वत उठता है, न नदी शुद्ध होती है। गाँव की स्त्रियाँ साधारण काम में लगी हैं और किसी ऐसे की बात कर रही हैं जो वहाँ है ही नहीं — और उसी से शास्त्रों में भगवान् का एक अत्यन्त सुन्दर वर्णन निकल आता है।

हम प्रायः समझते हैं कि भक्ति को उनकी उपस्थिति चाहिए — कोई दर्शन, मन्दिर या प्रमाण। किन्तु जिस हृदय ने उन्हें सचमुच पा लिया, वह उन्हें तब भी देखता रहता है जब वे कहीं दिखाई नहीं देते, और ठीक-ठीक देखता है। गोपियों के नेत्र व्रज में थे, दृष्टि वन में — और यह कल्पना नहीं थी, क्योंकि शुकदेवजी वही सब परीक्षित को वन में घटती सच्चाई के रूप में सुनाते हैं। जब वे दूर जान पड़ें, जानिए कि यही वह घड़ी है जिसके लिए यह गीत बना था।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज अपने दिन का कोई ऐसा समय चुनिए जब भगवान् दूर प्रतीत होते हों — कोई लम्बी यात्रा, अनचाहे काम का प्रहर, कोई ऐसी प्रतीक्षा जिसे छोटा नहीं किया जा सकता — और उसके साथ वही कीजिए जो गोपियों ने अपने समय के साथ किया। मन को भटकाने के बजाय उसे उन्हीं से भर दीजिए: उनके सौन्दर्य का कोई एक चित्र स्मरण कीजिए — अधरों पर रखी वंशी, या लौटती गौओं की धूल से भरी वनमाला — और उसे वहीं थामे रखिए। उसे धीरे से, गीत की भाँति, पवित्र नाम से आरम्भ करते हुए कहिए: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

दशम स्कन्ध का यह पैंतीसवाँ अध्याय वृन्दावन का एक पूरा दिन उन्हीं की आँखों से दिखाता है जो उनसे सर्वाधिक प्रेम करती थीं और साथ नहीं जा सकती थीं। युगल श्लोकों में गोपियाँ उनकी वंशी के पीछे प्रातःकाल की चरागाहों से गिरि-ढलानों तक, उस सरोवर तक जहाँ हंस मौन हो जाते हैं, और सन्ध्या की स्वर्ण-धूल से होते हुए घर तक चलती हैं। गीत वहीं समाप्त होता है जहाँ से चला था, किन्तु पूर्णतः बदला हुआ। हम भी

सीखें कि जो हृदय उनका गुणगान करता रहता है, उससे भगवान् कभी दूर नहीं होते।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), पञ्चत्रिंश अध्याय, पृष्ठ 1111–1114।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।



ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-35-the-gopis-sing-of-krishna-in-the-forest-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट